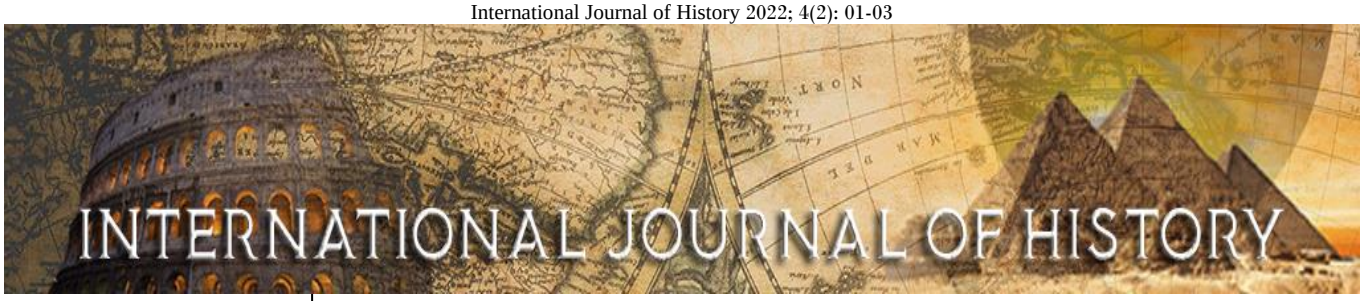

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2022; 4(2): 01-03
Received: 03-04-2022
Accepted: 04-05-2022

डॉ. श्वेता शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभाग इतिहास, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय नन्दग्राम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. श्वेता शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभाग इतिहास, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय नन्दग्राम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

हिन्दू विवाह–एक सर्वोतम संस्कार के रूप में

डॉ. श्वेता शर्मा

भूमिका

हिन्दू समाज में परम्पराओं, रीति–रिवाजों, मूल्यों की विशिष्ट मान्यता है। इसका प्रमाण भारतीय संस्कृति में संस्कारों की एक क्रमबद्ध श्रृंखला से मिलता है। जिनके द्वारा भारतीयों ने स्वयं को सुसंस्कृत किया तथा भारतीय संस्कृति संसार में विशिष्ट स्थान पर गौरवान्वित हुई।

भारतीय शास्त्रों में मानव के प्रत्येक पहलू को कुछ निश्चित संस्कारों के साथ जोड़ा गया है। ये संस्कार किसी न किसी रूप में मृत्युपर्यन्त मानव से जुड़े हैं। अवस्था व समय के अनुरूप उनका स्वरूप अवश्य ही परिवर्तित हो जाता है परन्तु ये निरन्तरता के साथ चलते रहते है। यह बात हमें सोचने पर विवश करती है कि आखिर यह संस्कार क्या है और यह मुख्यतः भारत में ही क्यों विकसित हुए।

संस्कार शब्द का अर्थ है शुद्धिकरण। संस्कार के दो रूप होते हैं आन्तरिक और बाह्य। बाह्य रूप के नाम रीति–रिवाज है। यह आन्तरिक रूप की रक्षा करता है।

संस्कार भारत और हिन्दू धर्म में ही क्यों पल्ल्वित हुए, इसका कारण यह है कि प्रत्येक देश के अपने निश्चित नियम, व्यवस्थायें, अनुशासन, रीति रिवाज व परम्परायें थी। उनके जीवन में भी संस्कारों का समावेश था परन्तु जिस आध्यात्मिक वातावरण का सृजन भारत में हुआ वहां संस्कार पूर्ण रूप से पल्ल्वित हुए। हिन्दू धर्म में सोलह प्रमुख संस्कार माने गये हैं जिनमें विवाह संस्कार को केन्द्रीय व विशिष्ट स्थिति प्रदान की गई है।

किसी भी देश की संस्कृति के समझने के लिए विवाह के महत्व को समझना आवश्यक है क्योंकि सामाजिक संगठन पर इस संस्था का व्यापक प्रभाव पड़ता है। विवाह द्वारा ही मनुष्य अपने सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्वों की पूर्ति करता है और इस सृष्टि के गतिशील क्रम का नियमन करता है। विवाह बंधन है जिसमें स्त्री व पुरूष जीवन पर्यन्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए समाज द्वारा स्वीकृत कर लिए जाते है।

विवाह एक संस्था है जिसके द्वारा दो व्यक्ति परस्पर विधिपूर्वक बंधन में बँधकर समाज की आधारशिला रखते हैं जिसमें एक परिवार का निर्माण होता है। उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया जाता है। इस क्रम में विभित्र बंधन जन्मते है और उनका स्थानानुसार नियमन किया जाता है। इस प्रकार एक श्रृंखलाबद्ध रूप से अपने कर्त्तव्यों का पालन व अधिकारों के प्रयोग द्वारा जीवन को सभ्य व मर्यादित रखने व एक नियंत्रित, नियमित व सांस्कृतिक समाज स्थापना का प्रतिफल ही विवाह संस्कार का आरम्भ है।

हिन्दू धर्म में विवाह का स्थान अतिविशिष्ट है यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में इसे सर्वप्रमुख संस्कार माना गया है व अन्य संस्कार इसके चारों ओर भ्रमण करते हैं। भारतीय संस्कृति धर्म पर आधारित है और विवाह द्वारा ही धर्म की रक्षा की जा सकती है इसलिए विवाह के सम्पत्रीकरण में इतने अधिक धार्मिक कृत्यों का क्रमबद्ध प्रतिपादन किया गया है ताकि मानव उसकी महत्ता को स्वीकारें और धर्म का पालन करें। हिन्दू धर्म में विवाह ही वह माध्यम है जो सामाजिक बन्धन की कड़ियों को जोड़कर समाज को प्रेम व सौहार्द का आधार प्रदान करता है। साथ ही विवाह के आदर्श रूप का प्रतिपादक भी हिन्दू धर्म है क्योंकि गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ विवाह से ही माना जाता है। इसे धार्मिक संस्कार के रूप में ग्रहण किया गया है। इसका कारण है कि हिन्दू समाज में कोई भी धार्मिक कार्य पत्नी के बिना सम्पत्र नहीं होता इसलिए उसे सहधर्मिणी कहा गया है और अविवाहित पुरूष को अपवित्र माना गया है। विवाह गृहस्थ जीवन का मूल है और सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर निर्भर करते है।

धर्म, प्रजा व रति को विवाह का उद्देश्य बताया गया है विवाह के धार्मिक व सामाजिक उद्देश्य इन तीनों उद्देश्यों से पूरे हो जाते हैं। विभित्र देशों और धर्मों में विवाह की अपनी मान्यता, रीति रिवाज व परम्परायें है और सभी स्थानों पर यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसाई धर्म में विवाह की अपनी मान्य पद्धति है। वहां परसपर सहमति द्वारा विवाह आयोजन किया जाता है परन्तु ईसाई धर्म में जीवन के अन्य पक्षों की भांति विवाह पक्ष भी है।

विवाह वहां एक संस्था या उत्तरदायित्व के रूप में परिलक्षित नहीं होता। दो व्यक्तियों की आपसी समझ ही विवाह का आधार होता है। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में प्रायः पूरे जीवन में व्यक्ति स्वच्छंदता पूर्वक कई विवाह कर लेते हैं व समाज भी उन्हें मान्यता प्रदान करता है। अतः ईसाई धर्म में विवाह का स्वरूप एक नियत संस्था का नहीं वरन स्व–सन्तुष्टि पर आधारित कार्यों के मध्य एक कार्य का है यही कारण है कि आज भी वहां विवाह में स्थिरता नहीं है।

इस्लाम धर्म में विवाह के अर्न्तगत एक पुरूष को चार स्त्रियों से विवाह की अनुमति है साथ ही विवाह विच्छेद का अधिकार भी पुरूषों को दिया गया है। हालांकि सभी धर्मों की अपनी निजी परम्परायें हैं परन्तु यह तथ्य विवाह में असंतुलन पैदा करता है। मुस्लिमों के मुतहा विवाह में एक विशेष अवधि निर्धारित होती है और वह अवधि बीत जाने पर वह दोनों अलग हो जाते हैं अर्थात् मुस्लिम धर्म या इस्लामी देशों में भी विवाह ने एक सम्पूर्णता का रूप धारण नहीं किया है। वहां इसे जीवन का एक भाग स्वीकार किया गया है परन्तु परिवार, समाज के सार के रूप में विवाह का स्थायीकरण नहीं हो पाया।

हिन्दू विवाह का सर्वप्रथम उल्लेख हम आश्वलायन गृह्यसूत्र में पाते है। विवाह क्यों हिन्दू धर्म में एक संस्कार बन गया? हिन्दू धर्म में विवाह को बड़े विस्तृत व व्यापक अर्थों में ग्रहण किया गया है। यह केवल दो व्यक्तियों का ही नहीं, दो परिवारों व सम्पूर्ण समाज का आधार है। सभी संस्कार विवाह संस्कार के चारों ओर परिक्रमित होते प्रतीत होते हैं। और जो चीज समाज का आधार हो वह निश्चित ही एक श्रेष्ठ संस्कार के रूप में स्थापित होती है। भारतीय जीवन पद्धति के अनुसार जिस समय जीवात्मा स्त्री के गर्भ में प्रवेश करती है उसी समय से उसका संस्कार प्रारम्भ हो जाता है और फिर उसी जीवात्मा के निरन्तर सांस्कारिक विकास हेतु संस्कारों को क्रमिक रूप से किया जाता है व विद्यार्जन के पश्चात् उसे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने हेतु विवाह संस्कार किया जाता है।

विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में विवाह एक सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित एवं गौरवमंडित संस्कार के रूप में उपलब्ध होता है। कन्या को ग्रहण करते समय पति कहता है "मैं सौभाग्य की प्राप्ति के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ तू भी मुझे पति के साथ जरा अवस्था को प्राप्त हो। ऐश्वर्य मुक्त, न्यायकारी, उत्पत्तिकर्ता एवं संसार के पोषण करने वाले ईश्वर तथा देवताओं ने गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान के लिए तुमको मुझे दिया है।[1] यह मेरी सुमगंली पत्नी है आकर इसे देखो। इसको आशीर्वाद दो और अपने अपने घरों को प्रस्थान करो।[2]

ऋग्वेद में विवाह संस्कार का ऐसा सुन्दर एवं सूत्रबद्ध रूप प्राप्त होता है। विवाह नहीं करने वाला पुरूष यज्ञ का अधिकारी ही नहीं था इससे ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्म में अति प्राचीनकाल से विवाह को अति महत्वपूर्ण व प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। तत्कालीन समय मे विवाह अपने स्थायित्व के रूप में विद्यमान था।

हिन्दू धर्म में विवाह को एक धार्मिक बंधन माना गया। पति–पत्नी अपने ऊपर आपत्तियाँ सहकर, एक दूसरे के प्रति त्याग करके भी इस बंधन में संयुक्त रहना चाहते हैं। यह परिवार व समाज हेतु अनेक पक्षों में लाभकारी होता है इससे बच्चों को भटकाव नहीं मिलता, पति–पत्नी का समाज में सम्मान जनक स्थान रहता है व मतभेद समाप्ति के पश्चात् प्रेम–भावना भी उत्पत्र हो जाती है। विवाह का संबंध जन्म–जन्मान्तर का है।[3] हिन्दू विवाह संस्कार ही इस प्रकार का है कि पति–पत्नी यदि पृथक्करण की सोचते भी है तो उन्हें पूर्व प्रतिज्ञा ध्यान आती है। अथर्ववेद के मंत्र में वर–वधू स्वयं को पूर्ण एक दूसरे में मिला देने का संकल्प करते हुए कहते हैं सब देवों ने हम दोनों के हृदयों को मिलाकर इस प्रकार एक कर दिया है कि जिस प्रकार से दो पात्रों के जल परस्पर मिला दिये जाने पर एक हो जाते है।[4]

वृद्धजनों का आशीर्वाद उन्हें जीवन पर्यन्त चकवा–चकवी की तरह विवाह बंधन में बंधे रहने को कहता है।[5] हिन्दू विवाह विधान दिव्य बंधन है जिसमें दो व्यक्ति परस्पर हृदय दान करते हैं। हृदय दान जो जीवन में एक बार ही हो सकता है और दिया हुआ दान लौटाया भी नहीं जा सकता, इसलिए मोक्ष प्राप्ति तक एक ही विवाह बंधन होता है हालांकि इसके अनेक अपवाद भी है परन्तु वर्तमान में यही आदर्श प्रासांगिक है।

हिन्दू विवाह एक ऐसा धार्मिक संस्कार है जो जीवन पर्यन्त वर–वधू को एक दूसरे के प्रति निष्ठा भाव से जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। यह कोई समझौता नहीं जिसमें हल्का सा भी मनमुटाव विच्छेदन के लिए उत्तेजित करता है। वैदिक मान्यतानुसार किसी को वरण कर लेने के बाद उसका त्याग पाप है। अतः आवश्यक है कि वर–वधू का चुनाव विवेकपूर्ण हो अथर्ववेद में कहा गया है कि विवाह तभी होना चाहिए जब वर–वधू को चाहने वाला हो और वधू–वर को चाह रही हो।[6]

भारत में प्रेम और विवाह को आध्यात्मिकता से जोड़ा जाता है। प्रेम आत्मिक होता है इन्द्रियवृत्ति से ऊपर उठकर प्रेम आत्मा से संबंध स्थापित करता है। दो आत्मायें सहज ही एक हो जाती है। आत्मिक एकता ही प्रमाणिक प्रेम होती है इसलिए वैदिक संस्कृति में वैवाहिक प्रसंगों में आत्माओं के सम्मिलन की बात कही गयी है।[7] प्रेम को समाज से जोड़ने के लिए विवाह का प्रावधान है। यदि प्रेम को माध्यम न बनाकर केवल शारीरिक सम्बन्ध मात्र से ही विवाह को निश्चित कर दिया जाए तो वह अनुचित होगा क्योंकि प्रेम के कारण ही विवाह लौकिक भूमि पर भी प्रमाणित हो सकता है। आध्यात्मिक और लौकिक जीवन की संगति से ही जीवन पूर्ण होता है केवल आत्मिक और आध्यात्मिक प्रेम भी सफल नहीं हो सकता इसलिए विवाह का सामाजिक व आध्यात्मिक महत्व बढ़ जाता है। हिन्दू विवाह की इसी आध्यात्मिकता के कारण हिन्दू धर्म में इसे एक संस्कार माना गया है।

सन्तान प्रेमपूर्ण वैवाहिक जीवन का अद्वितीय फल है। भवभूति सन्तान को प्रेम ग्रन्थि कहते हैं। प्रत्येक चीज का विभाजन हो सकता है परन्तु संतान अविभाज्य है क्योंकि यह प्रेम कृति है इसलिए प्राचीन काल से ही सामाजिक मान्यता प्राप्त विवाह जो वैदिक रीति से सम्पत्र हो उसमें विवाह विच्छेद को कभी मान्यता नहीं दी गई। यह स्थिति दम्पत्ति को एक दूसरे से बांधे रखती है। कभी–कभी कटुता होने पर भी कुछ समय पश्चात् यह सहज ही प्रेम में परिवर्तित हो जाती है, यदि विभाजन को मान्यता मिले तो प्रेम की एकता के अद्वैत का खण्डन हो जाता है। उर्वशी–पुरूरवस सूक्त में वैवाहिक दृष्टिकोण का एक मानसिक रूप प्रकट होता है। जब तक श्वसुर कुल में अग्नि प्रदीप्त है, तब तक कौन एकमत वाले दम्पत्ति को अलग कर सकता है।[8]

हिन्दू विवाह की यहीं अखण्डता उसे सशक्त सामाजिक संस्था एवं सर्वोत्तम संस्कार का रूप देती है।

आजीवन प्रेम विवाह संस्कार का परिणाम ही हो सकता है और वह तभी जबकि संस्कार कर्म को समझा जाये और उसी के अनुसार चला जाये। विवाह संस्कार हो जाने मात्र से ही प्रेमोत्तपत्ति होगी ऐसी बात नहीं अपितु उसेक अनुसार चलना होगा। विवाह में प्रेम की इसी पावनतापूर्ण असीमता ने इसे हिन्दू धर्म में संस्कार रूप में प्रतिष्ठित किया है। मनु के अनुसार पति–पत्नी और सन्तान तीनों मिलकर एक पुरूष कहलाता है। इसलिए विद्वान् कहते है कि जो पति है वही पत्नी है प्रजापति का बनाया हुआ यह नियम है कि बेचने या छोड़ देने से भी पत्नी–पति से अलग नहीं हो सकती।[9]

भारतीय ऋषियों की धारणा थी कि प्रत्येक व्यक्ति जो इस संसार में जन्म लेता है उसे संसार में तीन ऋण चुकाने होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में वह ऋषि ऋण चुकाता है। गृहस्थ आश्रम में यज्ञ करके वह देवताओं का ऋण चुकाता है व पुत्र उत्पत्रकर वह पितृऋण चुकाता है। सुचारू रूप से यज्ञों को करना और संतानोत्पत्ति, गृहस्थाश्रम में ही संभव था इसलिए इस आश्रम का इतना महत्व

था। मनुस्मृति के अनुसार पंच महायज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थ का अनिवार्य कर्तव्य था। ये पांच यज्ञ–ऋषि यज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ और पितृयज्ञ थे।[10] पांच महायज्ञों के सिद्वान्त में तीनों ऋणों की प्राचीन भावना का समावेश हो गया।

हिन्दू विवाह गृहस्थ आश्रम का आधार है क्योंकि विवाह के पश्चात् ही मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है व वैधानिक रूप से सभी कर्तव्यों व अधिकारों का पालन तथा भोग करता है। हिन्दू विवाह द्वारा उस संस्कृति को आगे बढ़ाया जाता है जो पुरूष को विरासत में मिलती है। संतान को जाति विशेष के आदर्शों और उद्देश्यों का प्रतिनिधि समझा जाता था। इस सिद्धांत में कामेच्छा और सन्तानोत्पत्ति की इच्छा को गौण और संस्कृति को आगे बढ़ाने के कत्तव्यो को प्रमुख धर्म माना गया है। हिन्दू विवाह संस्कार के आरम्भ से इसकी सम्पत्रता तक संस्कारों की एक वृहद श्रृंखला है। मांगलिक दिवस का चयन, वरपेक्षण, वाग्दान, मंडप कार्य, नादिंश्राद्ध, वैवाहिक स्नान, वर यात्रा, मधुपर्क, समंजन, परस्पर समीक्षण, कन्यादान, अग्नि स्थापना, विवाह होम, पाणिग्रहण, लाजा होम, अग्निपणियन, अश्मारोहण, केश मुंजन, सप्तपदी, अभिषिंचन, सूर्योदीक्षण, वधू को आशीर्वाद, वृषिभचर्म पर वधू को आसीन करना, विवाह दक्षिणा, ध्रुव तथा अरूँधती दर्शन, वधू का उद्धार, गृह प्रवेशीय होम, त्रिरात व्रत, चतुर्थी कर्म व स्थाली पाक आदि विवाह के कृत्य हैं। इन सभी रीति रिवाजों का उद्देश्य महज बाहय आकर्षक एवं प्रसन्नता नही वरन् विवाह जैसी संस्था के स्थायित्व एवं महत्ता को प्रदर्शित करने के निमित्त इसका सम्पन्नीकरण किया गया जो हिन्दू विवाह को सर्वोत्कृष्ट संस्कार बनाते हैं।

विवाह संस्कार में पहला प्रमुख धार्मिककृत्य पाणिग्रहण है। इसमें पति–पत्नी के साथ कहता है कि हम दोनों वृद्धावस्था तक सुखी जीवन व्यतीत करें और देवताओं को इसका साक्षी मानता है।[11] इस संस्कार में दूसरा महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य पवित्र अग्नि की परिक्रमा है जिसका प्रमाण ऋग्वेद से मिलता है।[12] सम्भवतः इस धार्मिक कृत्य का यह अर्थ है कि विवाह से पूर्व कन्या देवताओं की सम्पत्ति होती है और देवता ही पति को कन्या भेंट करते है। अधिकतर धार्मिक कृत्य देवताओं की कृपा प्राप्त करने के लिए किये जाते थे। पति–पत्नी जो सात कदम साथ–साथ चलते थे उसे सप्तपदी कहते हैं।[13] यह धार्मिक कृत्य उन प्रतिज्ञाओं का प्रतीक है जिनमें पति–पत्नी एक दूसरे से परामर्श करके ही सब कार्य करने का संकल्प करते हैं इसलिए यह कृत्य आज भी हिन्दू विवाह का अनिवार्य भाग समझा जाता है। सात फेरे सात जन्म निभाने का प्रतीक है जो हिन्दू विवाह की अखंडता व पारलौकिता को दर्शाता है यह अन्य धर्मों में देखने को नहीं मिलता। गृह्यसूत्रों में चतुर्थी कर्म का भी स्पष्ट उल्लेख है जिसमें पति–पत्नी विवाह के उपरान्त चौथी रात्रि को सहवास करते थे।[14] अतः इन धार्मिक कृत्यों ने हिन्दू विवाह को संस्कारों से अलंकृत कर दिया।

विवाह में धार्मिक क्रियाओं का समावेश इसे धार्मिक संस्कार का रूप देते हैं विवाह कार्य सम्पत्र होने में विभिन्न धार्मिक कृत्य, शगुन आदि किये जाते है जिनका प्रतीकात्मक महत्व है और जो विवाह को गतिशीलता व शुभता का आधार प्रदान करते हैं।

हिन्दू धर्म में विवाह द्वारा आर्थिक क्षेत्र में भी नियमन किया गया विवाह संस्कार में मनुष्य को स्मरण कराया जाता था कि स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ के लिए इस संसार में रहना है, वह धन भी धर्मानुसार कमाता था व उसका उपयोग भी धर्मानुसार ही करता था।

हिन्दू विवाह ने अपनी मूल विशेषताओं, निहित संस्कारों, धार्मिक कृत्यों, व्यवस्थित तत्वों की समग्रता के साथ स्वयं को संस्कारों के मध्य केन्द्र बिन्दु के रूप में स्थापित किया है जबकि संसार के अन्य किसी देश या धर्म में विवाह को ऐसी सांस्कृतिक मान्यता या स्थान नहीं प्रदान किया गया जैसे कि हिन्दू धर्म में, यही कारण है कि हिन्दू विवाह संसार भर में अपनी मान्यताओं परम्पराओं स्थिरता व अखंडता के कारण आकर्षण का केन्द्र बिन्दु है।

हिन्दू विवाह के अन्तर्गत संस्कृति की पूर्णता का दिग्दर्शन इसे सर्वोत्कृष्ट संस्कार की परिधि पर सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद–10.85.36
2. ऋग्वेद–10.85.36
3. ऋग्वेद–10.85.47
4. अथर्ववेद–11.5.18
5. ऋग्वेद–10.85.47
6. अथर्ववेद–11.1.9
7. ऋग्वेद–10.85.23
8. वही–10.95.12
9. बौधायन धर्मसूत्र–4.85.36, गौतम धर्मसूत्र 4.1.1
10. मनुस्मृति
11. ऋग्वेद–13.85.3
12. वही–10.85.39
13. शंखायन गृह्मसूत्र–13.15.17
14. आपस्तम्ब गृह्मसूत्र–13.7.18, शखांयन गृहसूत्र–1.7.15, गोभिल गृहसूत्र–2.3.5
15. शंखायन–1.7.15
16. गोभिला–2.3.5